[Conference- Innovation in Music & Dance :January,2015] ISSN- 2350-0530(O) 2394-3629(P)
DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v3.i1SE.2015.3434

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

संगीत में नवाचार का माध्यम संस्कृत भाषा

श्रीमती मनीषा शर्मा
शोधार्थी
शिशुकुंज इंटरनेशनल स्कूल, इंदौर (म.प्र.)

मानव सभ्यता के साथ–साथ कलाओं का विकास हुआ है । वैदिक युग के अंतिम कालखण्ड तक संगीत संबंधी कोई स्वतंत्र ग्रंथ उपलब्ध नहीं है तथापि संगीत कला के संबंध में उल्लेख स्थान पर अवश्य प्राप्त होते हैं । ऋग्वेद में गीत, वाद्य और नृत्य तीनों के संबंध में अनेक उल्लेख पाये जाते हैं। ऋग्वेद में गीत के लिए गीर, गातु, गाथा, गायत्र तथा गीति जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता था । यह सभी तत्कालीन गीत प्रकार थे और इनका आधार छन्द और गायन शैली थी । गीत तथा उसकी धुन के लिए 'साम' संज्ञा भी रही । साम धुन या स्वरावली के लिए पर्यायवाची शब्द रहा है। यह तत्कालीन जनसंगीत के अंतर्गत गायी जाने वाली धुनें थीं । इन्हीं के तर्ज पर वैदिक मन्त्र गाये जाते थे । संगीत लोकरंजन तथा ईश्वर रंजन दोनों के लिए उपयुक्त है, ऐसी वैदिक आर्यों की धारणा थी । यज्ञ के अवसर पर मंत्रों के साधारण पाठ या पठन की अपेक्षा मंत्रों का गायन अधिक प्रभावशाली माना जाता था । प्राचीन संगीत में शब्द और स्वर दोनों का समान महत्व माना जाता था। गीत गाने के लिए शब्दों की आवश्यकता होती है, इस रूप में वैदिक ऋचाएँ गाई जाने लगी। प्राचीन संगीत में शब्द और स्वर दोनों का महत्व माना जाता था । स्वर तथा शब्द का यही गठबन्धन 'साम' कहलाता था । सामवेद प्रत्यक्ष गायन से ही संबंधित वेद था । इसके दो रूप थे (1) आर्चिक (2) गान ग्रंथ या गान संहिता । आर्चिक में केवल ऋग्वेद की ऋचाओं का संग्रह था । गान ग्रंथ में ये ही ऋचाएँ स्वर सहित दी जाती थीं । 'नारदीय शिक्षा' सामवेद के गायन पर प्रकाश डालने वाला ग्रंथ है, इसमें 'साम' तथा गान्धर्व दोनों का विवेचन पाया जाता है । नारदीय शिक्षा के बाद भरत का 'नाट्यशास्त्र' संगीत की महत्वपूर्ण रचना है । संपूर्ण भारतीय साहित्य में यह एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें संगीत, नाट्य, नृत्य और काव्य का सर्वप्रथम प्रौढ़ विवेचन पाया जाता है । इसको यदि संगीत और नाट्य का विश्वकोष कहें तो आपत्ति न होगी । संगीत का ऐसा कोई पक्ष नहीं जिसका विवेचन इसमें न हुआ हो । स्वर के सूक्ष्मतम उपादान श्रुति की शास्त्रीय मीमांसा सर्वप्रथम इसी ग्रन्थ में पाई जाती है । शास्त्रीय संगीत की उपादेयता इसी ग्रन्थ में सिद्ध हुई है। शास्त्रों में संस्कृत भाषा के प्रयोग से हमारी संस्कृति का स्वरूप परिलक्षित होता है । संगीताचार्यों ने राग में निहित स्वरों का वर्णन संस्कृत भाषा के श्लोकों से प्रस्तुत किया है जिसे संगीत का उद्गम एवं विकास माना जा सकता है । संगीत सदा संस्कृति का संगी रहा है । संगीत चाहे भारतीय हो अथवा पाश्चात्य अपने विकास कीसामग्री जनजीवन से जुटाता रहा है । संगीत के इतिहास को संस्कृति के इतिहास से अलग नहीं किया जा सकता । वैदिक साहित्य विश्व साहित्य की प्राचीनतम रचना है । ऋग्वेद के अध्ययन से यूनान, रोम जैसी प्राचीन सभ्यताओं के संगीत पर प्रकाश पड़ता है । संस्कृत साहित्य में संगीत के विकास की कड़ियाँ स्पष्ट रूप से पाई जाती है। यह विकास तीन काल खण्डों में विभाजित किया जा सकता है । प्रथम काल खण्ड में वैदिक साहित्य के अलावा भरत, दत्तिल, कोहल, नारद आदि की रचनाएँ महत्वपूर्ण रहीं । दूसरे कालखण्ड में मतंग, भोज, नान्यदेव, पार्श्वदेव एवं शारंगदेव की कृतियां महत्वपूर्ण रहीं और तीसरा काल खण्ड गोपाल नायक से प्रारंभ होकर अब तक है । हमारा साहित्य वेदों पर आधारित है । गान की अभिव्यक्ति की संपूर्ण पराकाष्ठा सामवेद पर ही मानी गई है। सामवेद को ऋग्वेद के मंत्रों का संग्रह माना जाता है। छांदोग्य उपनिषद में कहा भी गया है ''या ऋक् तत् साम'' अर्थात् जो ऋक है वह साम है । यदि ऋग्वेद से केवल गायन के लिए ऋचाओं का सामवेद के रूप में संग्रह किया गया होता तो केवल गेय मंत्रों का ही संग्रह होना चाहिए था, जबकि उपलब्ध सामवेद में लगभग 450 मंत्र पूरी तरह गेय नहीं है । अगर सामवेद के मंत्र ऋग्वेद से उद्धृत माने जाएं तो उनके रूप और स्वर निर्देश ऋग्वेद से भिन्न हैं। ऋग्वेदीय मंत्रों से उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वर पाए जाते हैं । जबकि सामवेदीय मंत्रों में सप्त स्वर विधान है । सामवेद का अध्ययन ऋग्वेद काल के पश्चात विकसित लोककला और संस्कृति को भी रेखांकित करता है । श्रुति परंपरा से पीढ़ी दर पीढ़ी निरंतर विकसित होते रहने वाले इस ज्ञान के भंडार का संभवतः प्रथम विभाजन व्यास ने किया था । यह विभाजन प्रमुखतः साहित्यिक विधाओं पर आधारित है – पद्य, गद्य और गान । सामान्यतः किसी भी भाषा का साहित्य इन्हीं तीन रूपों में पाया जाता है। इस दृष्टि से ऋग्वेद और अथर्ववेद पद्य प्रधान, यजुर्वेद गद्य प्रधान और सामवेद गान प्रधान है । इसी प्रकार संगीत में भी श्रुति के विभाजन की परिभाषा ग्रंथकारों ने इस प्रकार दी है ''श्रूयते इति श्रुतिः'' संस्कृत में 'श्रु' का अर्थ है सुनना । संगीत में 22 श्रुतियाँ मानी गई हैं । ग्रंथकारों ने विभाजन हेतु श्लोक भी लिखा है –

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षडज मध्यम पंचमाः ।
द्वे द्वे निषाद गांधारौ तिस्रिरिषभ धैवतो ।।

प्रत्येक श्रुति का अपना नाम व स्थान निश्चित किया गया है । श्रुति के बाद स्वर वैदिक काल में तीनों स्वरों का प्रचार था और वे थे स्वर, उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित । पाणिनि के समय तक संगीत के सातों स्वर प्रचार में आ चुके थे । भाषा हेतु भाव तत्व प्रधान होता है । भाव हेतु संगीत तत्व प्रबल होता है । भाषा से संस्कृति व संस्कृति में साहित्य विद्यमान होता है । जिस भाव को गायक अपने गायन से जनता के समक्ष रखना चाहता है वह भाव भाषा से संबंधित होता है और शास्त्रीय संगीत की विशेषता के अनुसार प्रत्येक राग के वर्णन का प्रथम चरण श्लोक है। यदि गायक प्रथम चरण से ही राग प्रारंभ करे तो वह भाव भाषा के भाव तत्व को उजागर करने में सहायक सिद्व होगी इस भाव की अभिव्यक्ति हेतु संस्कृत भाषा सहायक एवं सार्थक सिद्व होगी, जिसमें हम अपने संस्कार एवं संस्कृति का अभिन्न अंग मानकर शास्त्रीय संगीत की आधारशिला का प्रमाण प्रस्तुत कर सकेंगे । हमारा समाज व साहित्य संगीत के सोपान स्वरूप है जिसे संस्कारित कर ग्रंथकारों ने वेदों में, शास्त्रों में एवं एकत्रित कर जनमानस के समक्ष कुशलता से प्रस्तुत किया है आवश्यकता है उस भाव को अपनाने की ।

स्वरों की रंजकता का आकर्षण उसमें निहित रस व संपूर्ण अभिव्यंजना में है जिसे साहित्यिक भाषा के माध्यम से ही गायक अपनी गायकी में बिखेर सकता है । प्राचीनकाल में संगीतज्ञों ने शास्त्रीय संगीत को दो भागों में विभाजित किया था
(1) मार्गी अथवा मार्ग संगीत
(2) देशी संगीत अथवा गान ।

अति प्राचीन काल में ऋषियों ने जब देखा कि संगीत में मन को एकाग्र करने की एक अत्यंत प्रभावशाली शक्ति है तभी से वे इस कला का प्रयोग परमेश्वर की आराधना के लिये करने लगे । संगीत परमेश्वर प्राप्ति का प्रमुख साधन माना जाने लगा । लोगों का विचार था कि 'ऊँ' शब्द ही नाद ब्रह्म है। संगीत का उद्देश्य निश्चित करने के बाद संगीतज्ञों ने इसे कड़े नियमों से बांधने का प्रयत्न किया । भरत मुनि ने इस नियमबद्ध संगीत को जो ईश्वर प्राप्ति का साधन माना जाता है मार्गी अथवा मार्ग संगीत कहकर पुकारा । इस प्रकार शब्द प्रधान गायकी से एवं नियमों से जकड़ा संगीत हमारी संस्कृति के परिप्रेक्ष्य के आवरण से जुड़ा एवं जनजानस तक पहुंचा । नियम ही संस्कृति व संस्कृत भाषा का आवरण मानकर संगीत की अपूर्व श्रृंखला से जुड़ा । किन्तु शनैः शनैः प्राचीन ऋषियों ने यह भी अनुभव किया कि मात्र परमेश्वर आराधना ही संगीत व संस्कृति का उद्देश्य नहीं है अपितु इस संगीत में जनरंजन की भी अपूर्व शक्ति है । लोक रुचि एवं लोक परंपरा से जुड़कर संगीत जनमनरंजन की सार्थक अभिलाषा से ओतप्रोत होकर वेदकालीन परंपरा से भिन्न हो गया संगीत रत्नाकर नामक पुस्तक में लिखा है ।

यस्तु वाग्गेयकारेण रचितं लक्षणान्वितम् ।
देशीरागादिषु प्रोक्तं तद् गानं रंजनंजकम् ।।

अर्थात् वाग्येकारों ने अपनी बुद्धि से प्राचीन निबद्ध संगीत में परिवर्तन करके एक नवीन संगीत की रचना की जिसे जनमानस ने स्वीकारा ।

जनमानस के मानस पटल पर इस संगीत विषय की अवधारणा हमारी संस्कृति से स्वतः ही जुड़ी है क्योंकि आराधना की पृष्ठभूमि संस्कारों में निहित है और यही संस्कार संस्कृत भाषा की भी पृष्ठभूमि रही है । हृदय कौतुकम, राग तंरगिणी, संगीत सारामृतोद्धार, मानसोल्लास आदि अनेक ग्रंथ संस्कृत भाषा से उधृत हैं जिनमें संगीत तत्वों का समावेश है । यही ग्रंथ जब हम उच्चारित करते हैं एवं वह भाव स्पष्ट रूप से प्रगट नहीं होता तो उस प्रस्तुति से गायक की मात्र भाषा की अनभिज्ञता परिलक्षित होती है एवं भाव तत्व से वह अछूता रह जाता है । उदाहरण स्वरूप जयदेव कृत ''गीत गोविंद'' जिनकी अष्टपदियों को संत गायक वं नर्तक अपनी रचनाओं में लेते हैं जैसे

(1) ललित लवंगलता परिशीलन कोमल मलय समीरे ।
(2) ''जय जय देव हरे''

जब अर्थ की अनभिज्ञता है तो भाव भी अपना प्रयास छोड़ देते हैं। नृत्य ''कुचिपुड़ी'' में सत्यभामा का संवाद है, मूलरूप से वह संस्कृत में है । नृत्य की श्रृंखला कथकली में ''नल दमयंती'' है जिसे संस्कृत भाषा से तराशा गया है किन्तु भाषा की जानकारी न होने से भाव की तार्किकता पर आंच आना स्वाभाविक बात है । महानगरी उज्जैन में जब कालिदास समारोह आयोजित किया जाता है तब वहां श्लोक पाठ प्रतियोगिता आयोजित की जाती है । अधिकतर श्लोकों की प्रस्तुति गायन स्वरूप होकर किसी राग में निबद्ध होती है । इससे रागों का स्वरूप जनमानस तक आ जाता है एवं रंजकता के कारण

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

श्लोक पाठन अति मधुर एवं कर्णप्रिय हो जाता है । इससे ही जान पड़ता है कि संस्कार, संस्कृति व संगीत एक दूसरे के पर्याय हैं । संगीत में स्वरों से ही रस की महत्वपूर्ण भूमिका है और भाषा में शब्दों के माध्यम से साहित्य की सुंदरता छिपी हुई है । स्वरों के उतार चढ़ाव से रंजकता का भाव दिखता है और जिसे हम संगीत की भाषा में काकुभेद से जानते हैं। यही ''काकु' शब्द संस्कृत भाषा की देन है । संगीत में स्वर का उतार चढ़ाव है एवं भाषा में शब्दों का । आनंद दोनों में निहित है यही आनंद भाषा व रस को सार्थक करता है । संगीत में नवाचार इस भाषा से भी अपेक्षित हो सकता है । यदि हम हमारे संस्कारों को एवं भावों की अभिव्यक्ति को जोड़ दें तो अनभिज्ञता नवाचार के लिए अवरोध नहीं बन सकती । हमारे वेदों, शास्त्रों एवं वैदिक साहित्य में जिन मंत्रों को वर्णित किया है यदि हम उसे अपने संगीत से जोड़ने का कुशल प्रयास करें तो तत्कालीन गीत वाद्य व नृत्य का इतिहास साकार एवं गुंजित हो उठेगा। आवश्यकता है सार्थक अभिव्यक्ति जिसे नवाचार ही गौरवान्वित कर सकता है। हमारे संस्कारों की अमूल्य निधि संगीत की धरोहर में ही समाहित है जिसे हमें ही सहज कर उजागर कर साकार करना है । समस्त भारतीय संगीत की एकता मौलिक है मार्ग भेद या शैली भेद के कारण दिखने वाले भेद बाह्य है । उत्तर भारतीय तथा दाक्षिणात्य पद्धतियाँ केवल प्रादेशिक विशेषताओं पर आधारित शैलियाँ मात्र हैं । विभिन्नता में एकता भारतीय संगीत का प्रमुख सन्देश रहा है । संस्कृत भाषा संकेतात्मक भाषा है और संगीत की भी संकेतात्मक भाषा है इसलिये संस्कृत व संगीत का समन्वय आवश्यक है जिसे भाव व अभिव्यक्ति के रूप में प्रयोग कर सकते हैं । भाव की परिणिति का मूल आधार संगीत में ही निहित है जिसकी उत्पत्ति भाषा में ही संभाव्य है । संगीत सदा से ही संस्कृति का अंग रहा है । संस्कृति के उद्गम एवं विकास के साथ ही संगीत के उद्गम एवं विकास का क्रम देखा जा सकता है । संगीत का स्तर संस्कृति के स्तर पर निर्भर हुआ करता है । पश्चिमी विचारकों ने जब भारत के प्राचीन सिद्धातों को समझना आरंभ किया तब अपने दृष्टिकोण से उसे वर्णित, परिभाषित किया । हीज़नबर्ग वैज्ञानिक परीक्षण के द्वैत का जिक्र करते हुए कहते हैं कि दृष्टा की उपस्थिति ही दृश्य को परिवर्तित कर देती है । भारतीय कलाओं की आत्मा को समझने के लिये संस्कृत अति आवश्यक भाषा है । मूलतः संस्कृत से ही सभी भारतीय नृत्य विधाओं के लिये विषय एवं पद्य प्राप्त होते रहे हैं। संस्कृत के शिक्षण के साथ ही अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य का अध्ययन एवं अन्वेषण नृत्य की विषय वस्तु खोजने के लिये और उसके विस्तार के लिये अभीष्ट है । स्थूल रूप से यह प्रतीत होता है कि संगीत व संस्कृत कला की प्रासंगिकता को पुनः स्थापित करने के लिए एक समग्र विचार एवं शिक्षण पद्धति को अस्तित्व में लाना होगा । ईशावासोपनिषद–5 में लिखा है –

तदेजति, तन्न एजति, तद् दूरे, तदु अन्तिके ।
तदु अन्तरस्य सर्वस्य, तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ।।

अर्थात् वह चलता है, नहीं भी चलता है, वह दूर भी है, निकट भी है । वह सबके भीतर भी है और बाहर भी । इसलिये वह केवल राग नहीं अपितु राग रहस्य है संगीत राग है और साहित्य व भाषा रहस्य है।

संदर्भ –

1 *संगीत शास्त्र दर्पण – प्रथम भाग*
2 *संगीत शास्त्र दर्पण – द्वितीय भाग*
3 *संगीत बोध*
4 *भारतीय शास्त्रीय संगीत : शास्त्र, शिक्षण व प्रयोग*
5 *संगीत विशारद*
6 *सामवेद*